अजा

‘सिर का सालन’ को पढ़ते हुए विविधता का खयाल

कहा जाता है कि साहित्य किसी भी समाज का आईना होता है लेकिन क्या हमारा समाज इस आईने में हमेशा पूरी तरह से प्रतिबिम्बित होता है? हम यह कह सकते हैं कि साहित्य दरअसल किसी भी समाज के प्रभावशाली नज़रियों द्वारा गढ़ा जाता है। साहित्य को लिखने और प्रकाशित करने की क्षमता और विशेषाधिकार भी सम्भव है, कुछ ही हाथों तक सीमित रहता हो। बाल साहित्य भी इसी समाज में आकार लेता है। यह उस गैर-बराबरी वाली दुनिया में ही आकार लेता है जहाँ सभी आवाज़ों को बराबरी से नहीं सुना जाता या उन्हें समुचित नुमाइन्दगी

नहीं मिलती। कुछ छोटी कोशिशों को छोड़ दें तो कुल मिलाकर ऐसा साहित्य बहुत ही कम है जिसमें अलग-अलग तरह के बचपनों और संसारों को समुचित और पर्याप्त नुमाइन्दगी मिली हो।

कहानी की उपज

हैदराबाद स्थित अन्वेषी रिसर्च सेंटर फॉर विमेन ने पराग, टाटा ट्रस्ट के सहयोग से *डिफ्रेंट टेल्स* नाम की ृंखला के माध्यम से इन अलग बचपनों की नुमाइन्दगी की एक अच्छी कोशिश की है। इस ृंखला में मोहम्मद खदीर बाबू द्वारा लिखी गई किताब *हेड करी* मुझे खास तौर से अनोखी लगी। इस किताब की समीक्षा करते हुए दीपा श्रीनिवास लिखती हैं, "यह कहानी अपने घर पर भेड़ के सिर, जो उनके इलाके और समुदाय में बहुत ही खास और स्वादिष्ट भोजन माना जाता है, को पकाने से जुड़ी लेखक के बचपन की यादों के इर्द-गिर्द बुनी गई है। इसमें मांसाहार से जुड़े ऐसे आनन्द का वर्णन किया गया है जिसे विरले ही बाल साहित्य में जगह मिलती है जिसकी जड़ें बड़ी मज़बूती-से मानक शाकाहारी संस्कृति में जमी हुई हैं।" (सम्पादक, 2017)। *हेड करी* को बाद में *एकलव्य* द्वारा *सिर का सालन* नाम से हिन्दी में प्रकाशित किया गया। यह बहुत ही सुन्दर ढंग से लिखी गई कहानी है जिसमें लेखक इतवार के उस भोजन की अपने बचपन की याद को ताज़ा कर रहे हैं जो उनके, उनके परिवार और उस इलाके के लिए बहुत ही खास होता था। फर्क यह है कि वह भोजन मांसाहारी था।

पुस्तकालय संचालकों और शिक्षकों के साथ मैं जो काम करती हूँ उसमें मैंने पाया कि अपनी विषयवस्तु की वजह से इस किताब को पढ़ना या यूँ कहें कि हज़म करना कइयों के लिए बहुत मुश्किल था। भेड़े के सिर को पकाने की पूरी प्रक्रिया का इतना खुला और उन्मुक्त वर्णन! जब मैंने भी पहली बार पढ़ा तो एक-दो मिनिट के लिए असहज-सी हो गई। मैंने पहले कभी इस तरह का वर्णन नहीं पढ़ा था क्योंकि ऐसी कहानियाँ किताबों में हैं ही नहीं या बहुत ही कम हैं। बच्चों की ऐसी किताबें तो बहुत हैं जो सब्ज़ियों और फलों के बारे में हैं लेकिन मांसाहार से जुड़ी किताबें न के बराबर हैं। एक ऐसी ही दुर्लभ किताब जो मैंने पढ़ी थी, वह थी महाश्वेता देवी की *अवर नॉन-वेज काऊ* जिसे कई साल पहले *सीगल* द्वारा प्रकाशित किया गया था और बाद में इसे *तूलिका* बुक्स ने *दबंग गाय हमारी* शीर्षक से सचित्र प्रकाशित किया। हालाँकि, यह कहानी मांसाहार से ज़्यादा एक गाय के बारे में थी, पर अनोखी थी इसलिए कि उस गाय को मांसाहारी भोजन बहुत अच्छा लगने लगा था क्योंकि एक बार उसने उन केले के पत्तों को खा लिया था जिन पर परिवार के लोगों ने मांसाहारी खाना खाया था। पर ऐसी कहानियों में भी भोजन अक्सर कथानक

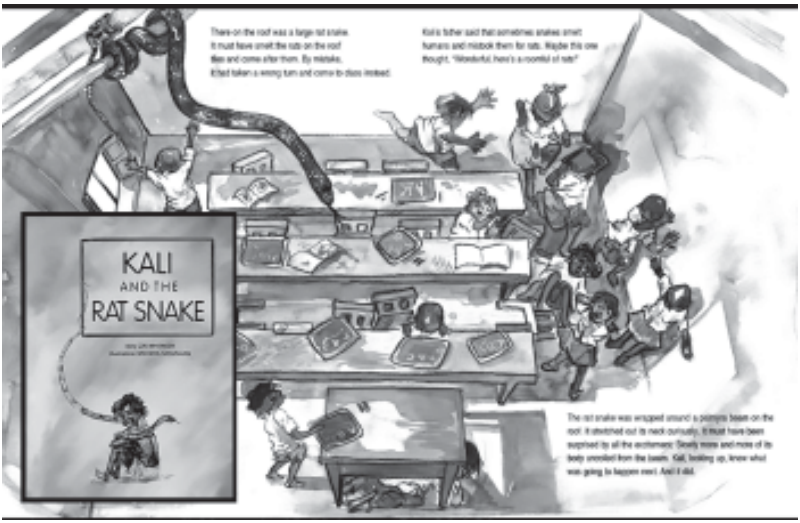

का एक छोटा-सा हिस्सा होता है। ज़ाई व्हिटेकर द्वारा लिखी गई और *तूलिका* द्वारा प्रकाशित *काली और धामिन साँप* में काली के भोजन, चींटी की चटनी का एक छोटा-सा उल्लेख है जिसे वह छुपा देता है। या महाश्वेता देवी की ही *क्यों-क्यों लड़की* कहानी को ले लें जिसमें 'साँप खाने' की बात कही गई है। लेकिन *हेड करी* में तो पकते हुए मांस के बरतन को खोल दिया गया है ताकि आपकी एक-एक इन्द्रिय तैयार होती करी (सालन) को महसूस कर सके।

टाटा ट्रस्ट के पराग इनीशियेटिव द्वारा चलाए जाने वाले लाइब्रेरी एजुकेटर्स कोर्स* के विद्यार्थियों के साथ इस किताब को पढ़ने और कहानी की परतों को खोलने के अनुभव मिले-जुले रहे। अगर कोई बात बड़ों की आदत में शुमार न हो तो उनके भीतर उसके प्रति गहरा प्रतिरोध हो सकता है। तो इस समूह के शाकाहारी विद्यार्थी कुछ पेज पढ़ने के बाद आगे नहीं बढ़ पाए, और जो आगे बढ़े भी वे स्तब्ध रह गए, लेकिन बाकियों को मुँह में पानी ला देने वाली इस कहानी को पढ़कर खूब मज़ा आया। यहाँ इस बात को ध्यान में रखना ज़रूरी है कि जब ये शिक्षक अपने बच्चों के लिए किताब चुन रहे होंगे तो इस बात से ज़रूर प्रभावित होंगे कि उन्हें किसी किताब के बारे में क्या महसूस हुआ,

* *लाइब्रेरी ऐजुकेटर्स कोर्स पराग द्वारा शिक्षकों, पुस्तकालय संचालकों और प्रशिक्षकों के लिए चलाया जाने वाला सात महीने का व्यावसायिक विकास पाठ्यक्रम है। इसके बारे में ज़्यादा जानने के लिए यह लिंक देखें:*
https://paragreads.in/parag-nurtures/library-educators-course

और किताब का चयन अन्ततः उन शिक्षकों के दृष्टिकोण से तय होगा। उनका यह दृष्टिकोण अनगिनत मान्यताओं, सांस्कृतिक परिस्थितियों और एक शिक्षक/प्रशिक्षक/पेशेवर के रूप में दुनिया के बारे में उनकी समझ से बनता है। इसलिए *हेड करी* जैसी रचना का होना और उसे लोगों तक पहुँचाना और भी ज़रूरी हो जाता है।

कहानी पर बच्चों की प्रतिक्रिया

मैंने इस कहानी को मुम्बई के एक सामुदायिक पुस्तकालय* में बच्चों के साथ साझा किया। मुझे याद है कि मैं इसे लेकर आशंकित थी। हम लोगों ने पिछले कुछ सत्रों में बहुत-सी मज़ेदार कहानियाँ साझा की थीं और यह सच है कि *हेड करी* भी मज़ेदार हो सकती है, लेकिन शायद सबके लिए नहीं। इस सत्र के लिए अन्य पुस्तकालय संचालकों के साथ मिलकर बातचीत करते हुए पढ़कर सुनाना या इन्टेरैक्टिव रीड अलाउड की गतिविधि की योजना बहुत ध्यान-से बनाई गई थी। चूँकि बच्चों के साथ हम एक ऐसी अलग और महत्वपूर्ण किताब को साझा करने जा रहे थे इसलिए इसकी योजना बनाने की प्रक्रिया उतनी ही जटिल थी जितनी सिर का सालन पकाने की प्रक्रिया। मैं सामुदायिक पुस्तकालय में बच्चों के दो समूहों के साथ इस किताब को पढ़ने के अनुभव यहाँ साझा कर रही हूँ।

हेड करी का हिन्दी में अनुवाद सुशील जोशी ने किया है और इसे बहुत ही सुन्दर उर्दू से बुना है। बच्चों की किताबों का कई बार इतना सरलीकरण कर दिया जाता है कि भाषा का सौन्दर्य ही खत्म हो जाता है। *सिर का सालन* इसका अपवाद है। इसमें स्थानीय और उर्दू शब्दों का बढ़िया मेल है जो बिलकुल सहजता से कहानी का हिस्सा बन गए हैं। *हेड करी* को ज़ोर-से पढ़ने के पहले हमने बच्चों के साथ एक खेल खेला। हमने बच्चों को चार टीमों में बाँट दिया और सबके साथ एक क्विज़ खेला। हर टीम को इस कहानी के कुछ शब्द दिए गए (हमने ऐसे शब्द चुने थे जो बच्चों के लिए नए हों)। उन्हें एक-दूसरे से बात करके दिए गए संकेतों के आधार पर उन शब्दों के अर्थ का अनुमान लगाना था। हमने उन्हें आठ

** ये सत्र सहयोग (जो घाटकोपर, मुम्बई के नारायण नगर में स्थित चहक ट्रस्ट की पहल है) के रोशन लाइब्रेरी प्रोग्राम के तहत आयोजित किए गए थे।*

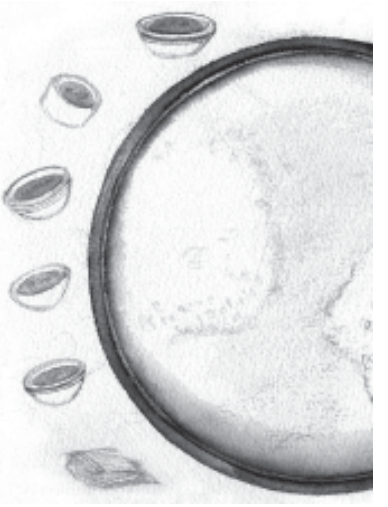

शब्द दिए थे और थोड़ी मदद के सहारे उन्होंने छह शब्दों के अर्थ के सही अनुमान लगा लिए। कहानी पढ़ने से पहले हमने भारत के नक्शे पर ओंगोल शहर को भी ढूँढ़ लिया। हमने यह चर्चा भी की कि क्या उनका कोई पसन्दीदा भोजन है, और वाकई हर एक बच्चे का कोई-न-कोई पसन्दीदा भोजन था।

पहले दिन जब बातचीत करते हुए पढ़कर सुनाया गया तो वहाँ मौजूद सभी बच्चे माँसाहारी थे। जहाँ ये बच्चे रहते थे उस इलाके में उसी तरह की माँस की दुकानें थीं जिस तरह की दुकान का ज़िक्र किताब में किया गया है। पढ़ते हुए यह बात सामने आई कि अधिकांश परिवारों के लिए इतवार का दिन खास होता है। जहाँ तक घरेलू कामों की बात है तो ज़्यादातर बच्चों की माताएँ ही घर में खाना बनाती हैं (जैसा कहानी में भी है) और बेटियाँ इसमें उनकी मदद करती हैं लेकिन पता नहीं क्यों बच्चे इस बात को भी रेखांकित करना चाहते थे कि कुछ परिस्थितियों में पिता लोग भी खाना बनाते हैं। पहले एक बच्चे ने अपनी बातें बताईं, फिर बाकी बच्चों ने भी उसमें अपनी बातें जोड़ीं। माहौल में सहजता थी, खुशी थी और बच्चों की प्रतिक्रियाएँ ऐसी थीं मानो मुँह में पानी आ रहा हो। वहाँ मौजूद तकरीबन हर बच्चा माँस को पकाने की प्रक्रिया से और उसमें क्या-क्या होता है, उस सब से वाकिफ था। कहानी पढ़कर सुनाने के पश्चात् की गतिविधि में बच्चों ने मिलकर अपने घरों के खास पकवानों की विस्तृत रेसिपी लिखी और इस तरह हमारे पास मछली के अण्डों, दाल का सालन और मटन बिरयानी जैसी कई व्यंजनों की रेसिपी तैयार थी।

दूसरी बार जब किताब को एक मिले-जुले समूह के सामने ज़ोर-से पढ़ा गया, तो इस समूह में शाकाहारी और मांसाहारी, दोनों तरह के बच्चे थे। जब कहानी भेड़े के सिर को पकाने के लिए तैयार करने के बिन्दु पर पहुँची तो कमरे में कुछ लोगों के चेहरों पर नापसन्दगी के भाव उभर आए। हमने उनसे पूछा कि उनको इसमें क्या अप्रिय लगा। उन बच्चों ने कहा कि इस तरह का वर्णन उन्हें बहुत ही भद्दा और गन्दा लगा क्योंकि वे मांस नहीं खाते हैं। एक और मित्र, जिन्होंने बच्चों के साथ मिलकर इस कहानी को पढ़ा था, ने बताया कि उन्हें भी असम्मति

की प्रतिक्रियाएँ देखने को मिली थीं। हालाँकि, यहाँ ये बच्चे कुछ देर में सहज हो गए क्योंकि उनके कुछ दोस्त मांसाहारी थे और उन्होंने इस बात को कहा कि आखिर तो यह अपनी-अपनी पसन्द की बात है। पुस्तकालय संचालकों के रूप में हम बस यह आशा ही कर सकते हैं कि उन्होंने महज़ प्रतीकात्मक रूप से यह बात नहीं कही होगी और ये बच्चे और किशोर बड़े होने पर भी दूसरों की पसन्द का सम्मान करने में विश्वास करते रहेंगे – खासकर ऐसे समय में जब लोगों के फ्रिज खोलकर उनकी पसन्दों की तहकीकात की जा रही हो और इसके लिए लोगों की जानें तक ली जा रही हों। इसके बाद हमने फिर से अपने-अपने पसन्दीदा भोजन को बनाने की विधियाँ लिखने का काम किया। इस बार हमें समोसा, चाट, बिरयानी, और हाँ, सिर का सालन बनाने की विधियाँ भी मिलीं! यह अनुभव पहले-पहल तो वहाँ उपस्थित कुछ बच्चों के लिए विचलित करने वाला रहा लेकिन हमने अपने तरीके से इस बाधा को पार करते हुए अपनी गतिविधि

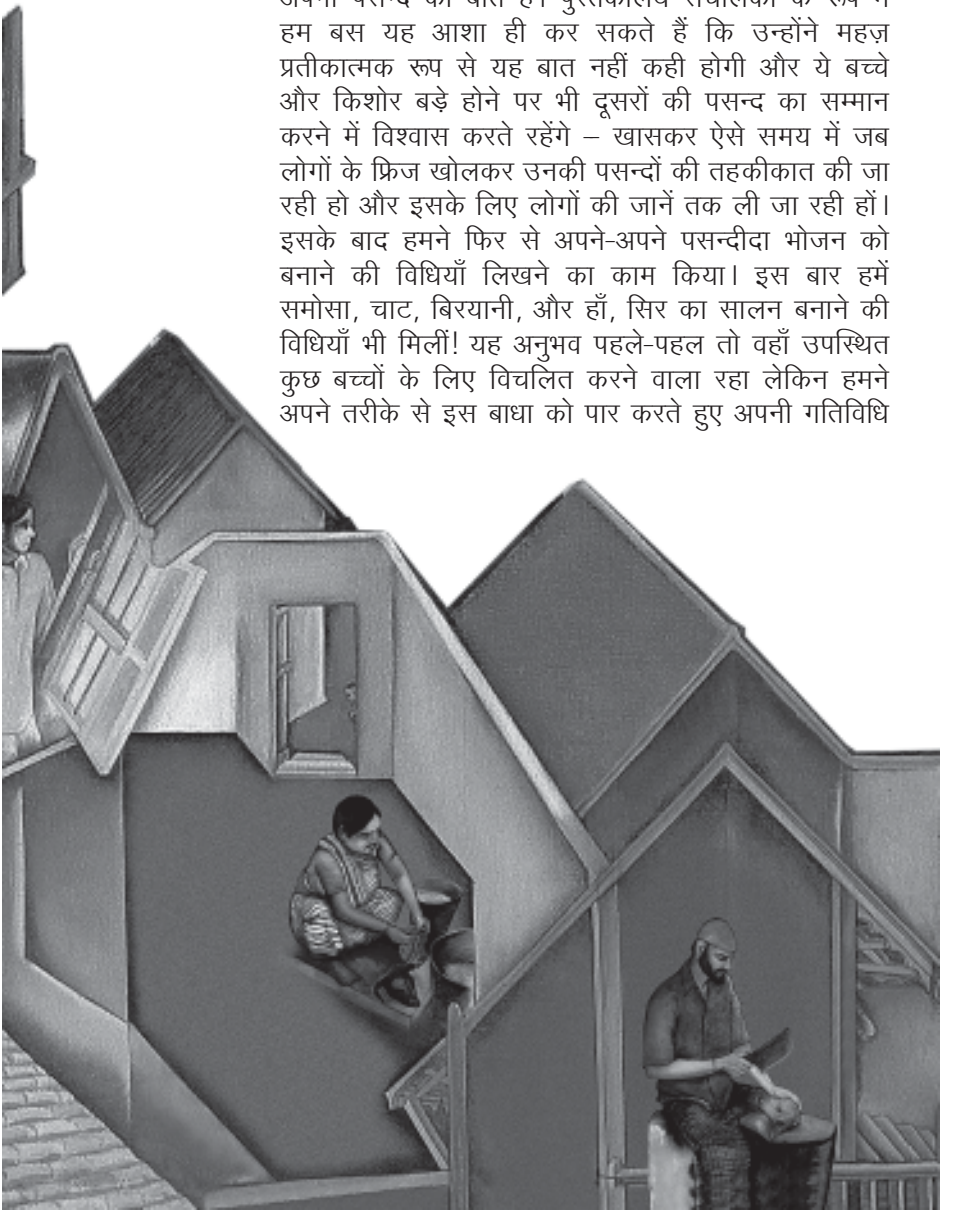

पूरी कर ली, और शायद जब ये बच्चे बड़े होंगे तो वे भी अपने तरीके से आसपास की दुनिया से पार पाते हुए अपनी राह बना लेंगे। इस पर हमारा कोई नियंत्रण नहीं होता और क्या हो भी सकता है? हम तो बस यही सुनिश्चित कर सकते हैं कि किसी पुस्तकालय की सभी कहानियाँ एक ही तरह की न हों।

निकोल ओवर्टन जो अमेरीका स्थित एक नॉन-प्रॉफिट संस्था, *वी नीड डाइवर्स बुक्स* की टीम की सदस्य हैं, लिखती हैं, 'विविधता शब्द अपने भीतर स्वीकार्यता और सम्मान के भाव समेटे होता है। इस बात को समझना कि हर व्यक्ति अनोखा है, और जाति, नस्ल, लिंग, लैंगिक रुझान, सामाजिक-आर्थिक स्तर, उम्र, शारीरिक क्षमताओं, धार्मिक व राजनैतिक धारणाओं से सम्बन्धित हमारी भिन्नताओं को स्वीकार करना ही विविधता है। यह सिर्फ सहिष्णु बने रहने से आगे बढ़कर हर एक व्यक्ति की अपनी परिपूर्णता को अपनाना और उसका जश्न मनाना है।' (ओवर्टन, 2016)। ऊपर दी गई भिन्नताओं में हम भोजन, कपड़ों और जीवन जीने के तरीकों की भिन्नताओं को भी जोड़ देते हैं क्योंकि ये भी हमारी पहचान के महत्वपूर्ण लक्षण हैं।

कहानी का प्रभाव

दरअसल, सत्ता का एक ढांचा है जो बाज़ार को चलाता है और किताबों के प्रकाशन और चयन को तय करता है। शिक्षक, माता-पिता, पुस्तकालय संचालक, स्कूल प्रबन्धन और लेखक सभी इस तंत्र का हिस्सा हैं। इसलिए सही विषयों का चयन और किताबों का प्रकाशन अक्सर पर्याप्त नहीं होता। बच्चों के साथ इन किताबों के बारे में बात करना बहुत महत्वपूर्ण है। लाइब्रेरी ऐजुकेटर्स कोर्स या शिक्षकों के प्रशिक्षण में ऐसी किताबों के इर्द-गिर्द चर्चा करते हुए हमने उस सोच की बनक को महसूस किया जो ऐसी किताबों और विचारों का प्रतिरोध करती है, हमें उस अज्ञान का अनुभव हुआ जो ऐसे विषयों को अनदेखा कर देता है और उन्हें बच्चों के लिए बहुत भारी मानता है। अन्याय, अभाव की कहानियाँ या ऐसी कहानियाँ जो किसी सामाजिक मिथक को तोड़ती हैं, उन्हें अक्सर बच्चों से दूर रखा जाता है, और तर्क दिए जाते हैं – क्या बच्चे समझ पाएँगे? बच्चे ऐसी विचलित करने वाली चीज़ें क्यों पढ़ें? उनके सवालों के जवाब कौन देगा? साहित्य का मकसद तो आनन्द देना होना चाहिए न? शायद ये हमारे अपने डर और पूर्वाग्रह हैं कि कुछ विषय हमें किताबों के उपयुक्त लगते हैं और कुछ नहीं। हम यह भूल जाते हैं कि लिखा हुआ तो पढ़ने की प्रक्रिया का सिर्फ एक हिस्सा है, दरअसल पाठक उसके बारे में खुद अपने अर्थ लगाते हैं जो उनकी अपनी दुनिया के कई अनुभवों से निकलते हैं, और ये अनुभव

सीमित भी हो सकते हैं और कई मायनों में एक-दूसरे से अलग भी।

किताबों के ज़रिए विविधता, सबकी नुमाइन्दगी, सबके प्रति सम्मान रखने और उन्हें मान्यता देने के उद्देश्य को बहुत स्पष्ट ढंग से सामने रखने की ज़रूरत है। इस भावना के बीज अलग-अलग तरह के बचपनों का शुमार करने वाली कहानियों के माध्यम से बचपन में ही डाले जा सकते हैं। कहानी को पढ़ने के सत्र के बाद निष्पक्ष चर्चा और संवाद किए जा सकते हैं। हमें इस बात का भरोसा करना चाहिए कि हमारे बच्चे इस तरह के साहित्य को भी तार्किक ढंग से समझ सकते हैं। जैसा कि पाउलो फ्रेइरे ने कहा है, "मनुष्य शब्द को पढ़ने से पहले दुनिया को पढ़ना सीखता है।" (फ्रेइरे और मासेदो, 1987)। हमारे बच्चे विभिन्न नज़रियों को समझने, स्वीकार करने और उनकी पड़ताल करने में सक्षम हैं, हमें बस किताबों के ज़रिए उनके लिए विचारों, अनुभवों और विविधताओं की खिड़कियाँ खोलने की ज़रूरत है।

अजा: टाटा ट्रस्ट के पराग इनिशिएटिव में प्रोफेशनल डेवलपमेंट एवं क्षमता वर्धन के तहत वे लायब्रेरी एजुकेटर कोर्स एवं पुस्तकालय सम्बन्धित प्रशिक्षणों की अगुआई करती हैं। प्रशिक्षकों और बच्चों का किताबों से जुड़ाव बनाने में विश्वास रखती हैं।
अँग्रेज़ी से अनुवाद: भरत त्रिपाठी: एकलव्य, भोपाल के प्रकाशन समूह के साथ कार्यरत हैं।

टाटा ट्रस्ट का **पराग इनीशियेटिव** भारतीय भाषाओं में बच्चों के लिए गुणवत्तापूर्ण कहानी की किताबें विकसित करने में, उन तक बच्चों की पहुँच बनाने में और स्कूल तथा समुदाय में पुस्तकालयों को स्थापित करने में सहयोग देता है ताकि बच्चों को किताबें निशुल्क और अबाध रूप से उपलब्ध हो सकें और एक ऐसा खुला व जीवन्त परिवेश बन सके जिसमें पढ़ने को प्रोत्साहित किया जाता हो। इसके अलावा पराग पुरस्कारों व व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के माध्यम से और शिक्षकों, पुस्तकालय संचालकों तथा सुगमकर्ताओं के लिए कार्यक्रमों का आयोजन करके शिक्षा के विभिन्न साझेदारों को साथ जोड़कर बाल साहित्य की दुनिया को पोषित करने का काम भी करता है।

References:

- Devi, M. (n.d.). *The Why Why Girl*. Chennai: Tulika Publishers.
- Editor, A. (2017). Language and Lifeworlds. [online] Anveshi.org.in. Available at: http://www.anveshi.org.in/language-and-lifeworlds/ [Accessed 7 Sep. 2017].
- Freire P., Macedo D., (1987), Literacy: reading the word and the world (pp 20-24). London: Routledge Taylor and Francis Group
- Khadeer Babu, M. (2009). *The Head Curry*. Hyderabad: Mango, D C Books.
- Missourian (2016). Increasing Diversity in Children's Books, Still a challenge. [online] Available at: *https://www.columbiamissourian.com/news/k12_education/increasing-diversity-in-children-s-books-stilla-challenge/article_6cafb600-ed49-11e5-92b8-8bbea608e339.html* [Accessed 8 Sep. 2017].
- Overton, N. (2016). Libraries need diverse books. Public Libraries Online, pp.1-5.
- Whitaker, Z., (2005). *Kali and the Rat snake*. Chennai: Tulika Publishers.